International Journal of Applied Research 2016; 2(4): 69-73

**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor:** 5.2
IJAR 2016; 2(4): 69-73
www.allresearchjournal.com
Received: 07-02-2016
Accepted: 13-03-2016

**डॉ. कविता राजन**
एसोसिएट प्रोफेसर सत्यवती महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

**Corresponding Author:**
**डॉ. कविता राजन**
एसोसिएट प्रोफेसर सत्यवती महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

# आरम्भिक भारतीय उपन्यास-साहित्य में नगरबोध

## डॉ. कविता राजन

### प्रस्तावना
### भारतीय उपन्यास का आविर्भाव

भारतीय साहित्य में औपन्यासिक विधा का आविर्भाव, निस्संदेह पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क का परिणाम है अर्थात् अंगरेजों के आगमन के उपरान्त भौतिक परिस्थितियों में जो परिवर्तन हो रहा था, उसके प्रभाव के बिना उपन्यास-विधा का भारतीय परिवेश में विकसित होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। अंगरेजों के शासन का एक महत्वपूर्ण परिणाम, यह था कि भारत में सामन्तवाद के स्थान पर पूंजीवाद का उदय होने लगा था। प्रायः सभी आलोचकों ने यह माना है कि पूंजीवाद के उदय और उपन्यास-विधा के आविर्भाव का सम्बन्ध जनक-जन्य जैसा है।[1] पाश्चात्य साहित्य का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि काल्पनिक कथा के रूप में वर्णनात्मक गद्य के माध्यम से अभिव्यजित जीवन का यथार्थ चित्र, जिसको कि उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया गया, पूंजीवाद के उदय के साथ ही अवतरित हुआ। इसका यह अर्थ नहीं है कि उपन्यास-विधा का पूर्व-प्रचलित अन्यान्य साहित्य-विधाओं से लेशमात्र भी सम्पर्क नहीं था, अथवा उपन्यास पर पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्पराओं का प्रभाव नहीं पड़ा था। ऐसा कहना साहित्य की रचना-प्रक्रिया तथा साहित्य के इतिहास-दोनों के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करना होगा।

गद्य-साहित्य और विशेषकर उपन्यास-साहित्य का जन्म जीवन के प्रति यथार्थवादी दष्टिकोण का परिचायक है और यथार्थवाद का प्रादुर्भाव सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जुड़ा है। "गद्य साहित्य में यथार्थवाद की और प्रवृत्ति सामन्तवाद के विनाश और सामन्तवाद को परिवर्तित करने वाली क्रांति से संबंधित है।"[2] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास के उदय और विकास का सम्बन्ध पूंजीवादी के उदय और विकास से जुड़ा है।

### नगरीकरण, मध्यवर्ग और भारतीय उपन्यास

उपन्यास का जन्म जीवन की जटिलताओं को यथार्थवादी दृष्टि से अभिव्यक्त करने के लिए हआ था। आधुनिक काल में पूंजीवाद के विकास और औद्योगिक प्रगति के कारण नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी। इन नये नगरों का स्वरूप प्राचीन नगरों से भिन्न और जटिल होने लगा । आधुनिक औपनिवेशिक या औद्योगिक नगरों में जो सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जटिलताएं उत्पन्न हुई, वे प्राचीन नगरों या शहरों में नहीं होती थीं। गांवों में तो उनका प्रवेश ही नहीं था।

आधुनिक शिक्षा और शासन-व्यवस्था के कारण भारतीय समाज में जिस मध्यवर्ग का उदय हुआ उसका अस्तित्व सामन्ती व्यवस्था में नहीं था। 'उपन्यास' ने इसी मध्यवर्ग की विशिष्ट विधा के रूप में अपनी पहचान बनाई है। यह वर्ग अनेक प्रकार की समस्याओं एवं जटिलताओं से ग्रस्त था। इसमें एक ओर नवीन मूल्यों के प्रति आकर्षण था, तो दूसरी ओर परम्परा का प्रबल मोह भी था। यह आधुनिकता के प्रति आग्रह रखता था तो प्राचीनता से पूर्णतः पिंड भी नहीं छुड़ा पाता था। इस वर्ग की समस्याओं और संश्लिष्ट प्रकृति की प्रस्तुति के लिए 'उपन्यास' ही उपयुक्त माध्यम था।

मध्यवर्ग के लोग प्रारंभ में बड़े-बड़े नगरों, छोटे शहरों या कस्बों में रहते थे। गांवों में यह विरल था। तत्कालीन गांवों में उपन्यास के पाठक भी नहीं थे। स्वभावतः भारतीय भाषाओं के जो प्रारंभिक उपन्यास प्रकाश में आए उनका संबंध शहरी जीवन से ही था। अधिकांश सामाजिक उपन्यासों के कथानक शहरी परिवेश या पात्रों से जुड़े होते थे। ऐतिहासिक, पौराणिक उपन्यासों की कथाओं का भी सम्बन्ध बहुलांश में नगरों से ही रहता था, किन्तु वहां लेखक के दृष्टिकोण में नगरबोध का अभाव होता था। ऐयारी या तिलिस्मों पर आधृत उपन्यासों की भी यही स्थिति थी। उनमें नगरबोध जैसी वस्तु का अन्वेषण निरर्थक है। जासूसी उपन्यासों का संबंध शहरों से ही होता था, किन्तु दृष्टिकोण और उद्देश्य की भिन्नता के कारण उनसे किसी प्रकार के गंभीर जीवन-बोध की प्रत्याशा कभी भी नहीं रखी गई।

अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यास-साहित्य की ही तरह हिन्दी का भी आरंभिक औपन्यासिक कृतित्व शहरी वातावरण को रूपायित करने वाला है। प्रेमचंद के पहले के कई उपन्यास इस दृष्टि से स्मरणीय हैं। प्रेमचंद में तो नगर जीवन और भी विस्तार से अपनी उपस्थिति जतलाता है। इस प्रसंग में एक बात ध्यान देने योग्य है कि प्रेमचंद और परवर्ती कई उपन्यासकारों में शहरी जीवन की जैसी विसंगतियां उभर कर सामने आई हैं वैसी आरम्भिक के उपन्यास-साहित्य में अनुपलब्ध हैं।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास-विधा का आविर्भाव सर्वप्रथम बंगला में हुआ, क्योंकि बंगाल का संपर्क सबसे पहले अंगरेजी सभ्यता और शिक्षापद्धति से हुआ। बंगाल में काफी उत्साह के साथ बहुत बड़ी संख्या में लोग अंगरेजी शिक्षा की ओर आकृष्ट हुए और वे नौकरियां भी पाने लगे। इसके फलस्वरूप मध्यवर्ग या 'भद्रलोक' ने अस्तित्व ग्रहण किया। इस वर्ग की समस्याओं और अंगरेजी साहित्य के प्रभावस्वरूप बंगला में उपन्यास-रचना का का श्रीगणेश हुआ।

हिन्दी और मराठों में लगभग एक ही साथ उपन्यास-रचना का प्रारंभ हआ। हिन्दी उपन्यासों पर बंगला, अंगरेजी और कहीं-कहीं मराठी[3] उपन्यासों का प्रभाव पड़ा था। मराठी उपन्यास भी बंगला और अंगरेजी के उपन्यासों से प्रभावित था। उर्दू-उपन्यासों का विकास भी हिन्दी-मराठी उपन्यासों के समान ही हो रहा था। इन सभी भाषाओं के उपन्यासों में समाज-सुधार और मनोरंजन की द्विविध प्रवृत्तियां पायी जाती हैं।

## आरम्भिक बंगला-उपन्यासों में नगरबोध

बंगला-उपन्यास के उद्भव के क्रम में कतिपय अनूदित कृतियों की चर्चा होती है[4], किन्तु भारतीय एवं पाश्चात्य जीवन-पद्धतियों के पारस्परिक सम्पर्कों एवं संघर्षों के परिणामस्वरूप उदित इस गद्य-रूप ने अपने शैशव में ही नगर में रहने वाले बाबुओं और रईसों के लड़कों पर पड़े विजातीय प्रभावों पर अपनी दृष्टि केंद्रित कर दी थी[5], इसने अपनी जागरूकता का परिचय देते हुए तत्कालीन नागरिक पात्रों को ही चुनने का कार्य किया था। बाबूर उपाख्यान (सन् 1821 ई.) और भवानीचरण वन्द्योपाध्याय के नवबाबुबिलास (सन् 1825 ई.) इस प्रसंग में उल्लेख्य हैं । बंगला के ये आरंभिक उपन्यास नागरिक जीवन के युगीन सांस्कृतिक संक्रमण को व्यंग्यपूर्ण शैली में चित्रित करते हैं। सामाजिक और नागरिक जीवन की वास्तविकताओं के निरूपण के इन्हीं प्रयत्नों को परिणति टेकचंद ठाकुर या प्यारी चांद मिश्र के अलालेर घरेर दुलाल (सन् 1857 ई.) में दृष्टिगत होती है।[6]

बंगला-उपन्यास में आधुनिकता का समावेश वस्तुतः शरत् के आविर्भाव के साथ हुआ था। प्रारंभ में बंगला-उपन्यास प्रचलित लोककथाओं और ऐतिहासिक वृत्तों पर निर्भर था। यों तो इस नवीन विधा के इतिहास में भारतचन्द्र-कृत विद्यासुंदर का स्थान महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने एक लोककथा को संशोधित एवं परिमार्जित रूप में पहली बार गद्य के माध्यम से प्रस्तुत कर बंगला-भाषा-भाषियों को एक स्वाद से परिचित कराया था।[7] किन्तु काल्पनिक इतिवृत्त के आधार पर सामाजिक समस्या उठाने वाला अलालेर घरेर दुलाल सच्चे अर्थों में बंगला-उपन्यास में आकार लेती हुई नगर-केंद्रित आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है। कभी-कभी इसे बंगला में उपन्यास का प्रवर्तन करने का भी श्रेय दिया जाता है।[8] इस रचना में शहरी जीवन का विडम्बनापूर्ण चित्र खींचा गया है। इसमें एक बड़े घर के बिगड़े हुए बेटे की कहानी कही गई है। इस कहानी के माध्यम से धन और कुसंगति का दुष्प्रभाव दिखाना लेखक को अभीष्ट जान पड़ता है।[9] काली प्रसन्न सिंह के हुतोम प्यांचार नक्शा नामक उपन्यास में भी यही विषय उठाया गया है। इस कृति पर अलालेर घरेर दुलाल का स्पष्ट प्रभाव है। इसमें कलकत्ते के सामाजिक जीवन के व्यंग्य-चित्र बोलचाल की भाषा में अंकित हुए हैं। अपनी मनोरंजकता और यथार्थता के कारण नागरिक जीवन के ये 'नक्शे' आज भी प्रासंगिक हैं।

प्रारंभिक प्रयत्नों के रूप में उपयुक्त कृतियों का महत्व निर्विवाद है, किन्तु सन् 1865 ई. में प्रकाशित बंकिमचंद्र की 'दुर्गेशनन्दिनी' नामक रचना से बंगला-उपन्यास-साहित्य का वास्तविक आरंभ माना जाता है।

बंगला-उपन्यास का आधुनिक स्वरूप शरच्चन्द्र के उपन्यासों के साथ प्रकट होता है। शरद के उपन्यास भावनामूलक हैं। उनका मनुष्य के बाह्य संघर्ष से संबंध नहीं है। वे बहिरंग और अंतरंग का संघर्ष दिखाकर अंतरंग के सत्य को कसौटी मानते हैं।

आरम्भिक बंगला-उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य काल के बंगला-उपन्यास या तो ऐतिहासिक वृत्तों से भरे हैं या उनमें समाज-सुधार का आग्रह प्रबल हैं। इस कारण आधुनिक युग की महत्वपूर्ण समस्या नगरीकरण और उसके प्रभाव की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई है। इसका एक कारण सम्भवतः यह भी हो सकता है कि बंगाली समाज में उस समय तक भावनामूलकता का प्राधान्य था और जीवन की कठिनाइयों से उसका बाद में साक्षात्कार हुआ था।

## आरम्भिक मराठी-उपन्यासों में नगरबोध

मराठी में उपन्यास-लेखन की परंपरा हिन्दी से अपेक्षाकृत पुरानी है। मराठी का पहला उपन्यास बाबा पद्म जी का यमुना पर्यटन (1857) है, जिसमें विधवा की स्थिति का करुण चित्र खींचते हुए लेखक ने उसे ईसाई धर्म में आश्रय दिलाया है।"[10] इससे पूर्व मराठी में कथा-लेखन का प्रारम्भ अन्य भाषाओं की तरह लोककथाओं या अंगरेजी के उपन्यासों के अनुवाद के रूप में शुरू हुआ था। मराठी-उपन्यासों को सामाजिकता की पृष्ठभूमि आप्टेयुग में प्राप्त हुई। इसके पूर्व मराठी में

अद्‌भुत वातावरण से ओत-प्रोत कल्पना-प्रधान और ऐतिहासिक उपन्यासों का बाहुल्य था। अद्‌भुत-रम्या की ओर प्रवृत्ति के कारणों की मीमांसा करते हुए कुसुमावती देशपाण्डे ने लिखा है- "अंग्रेजी शासन-व्यवस्था के प्रारंभ में महाराष्ट्र के लोगों का मन निष्प्रभ हुआ था। नयी आकांक्षाओं की ओर देखने की शक्ति उनमें नहीं थी। पुरानी स्मृतियां-निकटवर्ती काल के दूसरे बाजीराव के विलासपूर्ण और देशद्रोही व्यवहार की थीं। इसलिए उस समय के उच्चवर्ग को अद्‌भुत उपन्यासों द्वारा मनोरंजन करना अधिक सुविधाजनक प्रतीत हुआ।"[11]

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य के विकास-क्रम में जो स्थान और महत्व प्रेमचंद का है, वही मराठी-उपन्यास-साहित्य में ह.ना. आप्टे का है। 1885 में पुर्णे वैभव पत्र में हरिभाऊ का मछली स्थिति नामक उपन्यास क्रमशः प्रकाशित होने लगा था। उसी समय पाठकों को ऐसा प्रतीत हुआ था कि मराठी के साहित्याकाश में किसी तेजस्वितापूर्ण नक्षत्र का उदय हुआ है।[12] आप्टे जी अत्यंत मेधावी, परिश्रमी और प्रतिभावान व्यक्ति थे। उन्होंने अंगरेजी, फ्रेंच, संस्कृत, मराठी और बंगला भाषा की कृतियों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। रेनल्ड के *मिस्ट्रीज ऑफ ओल्ड लंदन* को महाराष्ट्रीय जामा पहनाकर उन्होंने मछली स्थिति नामक उपन्यास को क्रमशः प्रकाशित कराना आरंभ किया, किन्तु कुछ पृष्ठों के बाद ही उनकी प्रतिभा ने रेनल्ड का आश्रय छोड़ दिया और स्वतंत्र रूप से विचरण करना प्रारंभ किया। हरिभाऊ पर चिपलूणकर और आगरकर के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा था। आप्टे जी ने निम्नलिखित सामाजिक उपन्यास लिखे : *मछली स्थिति* (1885), *गणपतराव* (1887-88), *पण लक्षात कोण हो तो?* (1890-93), *यशवंत राव धरे* (1892-95), *मी* (1893-95), *जग हे असें आहे* (1897-99), *भयंकर दिव्य* (1901-1903), *आजय* (1904-06, अपूण), मायेचा बाजार (1910) और *कर्मयोग* (1913-17, अपूर्ण)।

हरिभाऊ के समकालीन उपन्यासकारों में नाथ माधव ने विहंगवृंद, डॉक्टर कादंबरी, विमलेवी ग्रहदशा, ग्रहदशेचाफेरा, सापल भाव, स्वयंसेवक इत्यादि सामाजिक उपन्यासों में नारी-शिक्षा, पुनर्विवाह, प्रौढ़ विवाह आदि की समस्याओं का विश्लेषण किया था। मराठी में नारी-शिक्षा के फलस्वरूप नारियों के स्वतंत्र पाठक-वर्ग का भी निर्माण हुआ था।

मराठी उपन्यासों की प्रारंभ से ही नागर पृष्ठभूमि रही है, अतः उनमें अधिकाशंतः शहरी उच्च मध्यवर्ग या मध्य मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण अधिक हुआ है। स्वयं आप्टे ने सुखमय जीवन व्यतीत करने वाले शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक और सामाजिक सुधारों-संबंधी विचारों को ही अभिव्यक्ति दी थी। इसका कारण यह था कि थोड़ी-सी अंगरेजी शिक्षा के बल पर आर्थिक दृष्टि से सुविधाजनक नौकरियां प्राप्त करना महाराष्ट्र के मध्यवर्ग के लिए मुश्किल नहीं था। "नौकरी प्राप्त करने के लिए संयुक्त परिवार को छोड़कर दूर रहना आवश्यक था, अतः विभक्त परिवार का आदर्श उसे अधिक समीचीन लगा। अपनी शैक्षणिक योग्यता के अनुसार सहधर्मिणी की शिक्षा पर ध्यान जाना भी स्वाभाविक था। नारी की शिक्षा के लिए बाल-विवाह की प्रथा का विरोध आवश्यक था। पाश्चात्य शिक्षा के संस्कारों तथा अपने अनुभवों के फलस्वरूप विवाह-विषयक विषमता पर ध्यान जाना भी आवश्यक था। नगरीय मध्यवर्ग की इन नयी परिस्थितियों में उत्पन्न नयी आकांक्षाओं, आदर्शों और इच्छाओं को आप्टे जी ने अपने उपन्यासों में व्यक्त किया। संयुक्त परिवार और विभक्त परिवार, नारी-शिक्षा, जरठ-बाला-विवाह, विधवा-विवाह इत्यादि विषय आप्टे के उपन्यासों में तत्कालीन नगरीय समाज के प्रतिबिंब के रूप में अंकित हुए हैं।"[13] यशवंत राव खरे में मध्यवर्गीय राजनीतिक आकांक्षाओं का चित्रण है। आप्टे ने मुख्यतः मध्यवर्गीय नारी के विविध प्रश्नों को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। नयी और पुरानी पीढ़ी का वैचारिक संघर्ष भी उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है। आर्थिक दृष्टि मध्यवर्ग के सुविधा-संपन्न होने के कारण उपन्यास पर इसकी आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। आप्टे के उपन्यासों में प्रतिबिंबित मध्यवर्ग का दुःख आर्थिक परिस्थितियों से उद्‌भूत न होकर वैचारिक मतभेदों अथवा स्वाभावभिन्नता से उपजा है।[14]

प्रेमचंद और आप्टे के नगरबोध में यह अंतर है कि प्रेमचंद ने निम्न-मध्यवर्गीय शहरी जीवन की आर्थिक कठिनाइयों के साथ औद्योगीकरण और मजदूरों की समस्याओं का चित्रण भी किया है, जबकि आप्टे ने सुविधा-सम्पन्न शहरी मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं तक ही अपने को सीमित रखा है।

वा.भ. जोशी यद्यपि आप्टेयुग के बाद के लेखक हैं तथापि उनका 'रोगिणी' नामक उपन्यास आप्टे युग (1915) में ही प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन से पूर्णतः कटकर विभक्त परिवार शहर में सुस्थिर हुआ है।

## आरम्भिक उर्दू-उपन्यासों में नगरबोध

हिन्दी-गद्य के समानान्तर उर्दू का गद्य और उसका साहित्य भी विकसित हो रहा था, अतः उर्दू के प्रारंभिक कथा-साहित्य की प्रवृत्तियां हिन्दी के आरंभिक कथा-साहित्य जैसी ही थीं। शुरू में उर्दू-साहित्य में अनूदित कहानियां ही अधिक थीं। उर्दू के आरंभिक साहित्य में इस जाति की कई अनूदित कहानियां मिलती हैं। फारसी कहानियों के अनुवादों और रूपान्तरणों में उर्दू-कथाकारों ने पर्याप्त रुचि ली थी।[15] वैसे उन्होंने भारतीय लोककथाओं की भी उपेक्षा नहीं की थी। इस प्रकार की कथाओं में *अलिफ लैला, बोस्तान ख्याल, दास्तान अमीर* हमजा, हातिमताई, बागबहार, *बैताल पचीसी, कलेलर दामना, सिंहासन बत्तीसी, गुलाबकावली* और *तोता मैना* आदि प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त रचनाओं की कथावस्तु कल्पना-प्रधान, नीति-उपदेशमूलक और चमत्कार-प्रधान है। इनका उद्देश्य मनोरंजन-प्रधान इतिवृत्त के माध्यम से जीवन से संबंधित नैतिक उपदेश देना है। इनमें किसी प्रकार के गूढ़ सामाजिक दर्शन का नितांत अभाव है। ऐसी रचनाओं का अपने समसामयिक जीवन से सीधा संबंध नहीं है, अतः इनमें नगरबोध जैसी आधुनिक प्रवृत्ति का न मिलना ही स्वाभाविक है।

नजीर अहमद (1831-1921) उर्दू के प्रथम उपन्यासकार माने जाते हैं जिन्होंने मिरातुल अरुस में 'दास्तानों' की राह छोड़कर नई सड़क का निर्माण किया था।[16]

आरम्भिक उर्दू-साहित्य में ज्वाला प्रसाद बर्क, नवाब सैय्यद, मुहम्मद आजाद और अहमद अली किदवई विशेष प्रसिद्ध हैं। बर्क कश्मीरी ब्राह्मण थे, जिन्होंने बंकिमचंद्र के कई उपन्यासों का उर्दू में अनुवाद

किया था। नवाब साहब का *नवाबी दरबार* नामक उपन्यास हास्य-व्यंग्य-प्रधान था। इसमें पुराने ढर्रे के नवाबों के व्यंग्य-चित्र हैं, किन्तु आधुनिक जीवन-बोध से रहित होने के कारण यह नगरबोधमूलक उपन्यास नहीं कहा जा सकता है।

पं. रतननाथ सरशार ने मनोरंजन के लिए साधारण जीवन की घटनाओं का वर्णन पहली बार उर्दू-उपन्यास-साहित्य में किया था। वे ब्राह्मण थे, किंतु मुसलमानों के घरेलू जीवन, रहन-सहन और रीति-नीतियों की अच्छी जानकारी रखते थे। उनके उपन्यासों में लखनऊ के नवाबों और उनके मुसाहिबों के सच्चे चित्र मिलते हैं। इसी क्रम में शहरी जीवन का थोड़ा-बहुत वर्णन हुआ है, किन्तु इसके पीछे किसी प्रकार की विशेष जीवन-दृष्टि नहीं जान पड़ती है। नगर-जीवन के जैसे कटु अनुभव प्रेमचंद और परवर्ती उपन्यासकारों में मिलते हैं, वैसे सरशार की कृतियों में नहीं हैं।

सरशार के बाद दूसरे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं मौलवी अब्दुल हलीम शरर। किन्तु इनके अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। इन्होंने *दुर्गेशनन्दिनी* के अंगरेजी अनुवाद का उर्दू-भाषान्तरण किया था। इनका पहला उपन्यास *दिलचस्प* एक सामाजिक उपन्यास है, किन्तु इसमें 'नगरबोध' की उपस्थिति नहीं है।

आरम्भिक उर्दू-उपन्यासकारों में मिर्जा मुहम्मद हादी रुसवा' सर्वाधिक प्रतिभाशाली और प्रखर सामाजिक चेतना के लेखक थे। उनके उपन्यासों में उमराव जान अदा, शरीफजादा तथा जातेशरीफ अत्यंत प्रसिद्ध हैं । रुसवा की उमराव जान अदा लखनऊ की एक तवायफ द्वारा खरीदी गयी एक अपहृत लड़की के जीवन का विश्लेषण है। इसमें हमें उन्नीसवीं शताब्दी की रियासतों से सम्बद्ध उथल-पुथल और पतन की तस्वीर मिलती है, उस समय की विभिन्न सामाजिक श्रेणियों से जुड़े हुए लोगों के सुनिर्मित चरित्र-चित्र मिलते हैं।"[17] उन्नीसवीं शताब्दी के सामन्तीय संस्कृति से प्रभावित पूरा समाज बड़ी दक्षता एवं सहजता से इस उपन्यास में चित्रित है।[18] तत्कालीन लखनऊ के उच्चवर्गीय समाज का चित्र इस उपन्यास में अवश्य उपलब्ध होता है, किन्तु आधुनिक औद्योगीकरण और नगरीकरण से उत्पन्न जटिलताएं उस समय के अवध के जन-जीवन में नहीं आ सकी थीं, अतः अपने पारिभाषिक अर्थ में 'नगरबोध' यहां निश्चिह्न-सा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आरम्भिक उर्दू-उपन्यासों में नगरबोध का कोई स्पष्ट आभास नहीं मिलता है। स्वयं प्रेमचंद इस दिशा में उर्दू-उपन्यास की रहनुमाई करते हैं। उनका पहला उपन्यास *असरारे मआबिद*[19] बनारस शहर के पाखंडियों की पोल खोलता है और *हमखुर्मा व हम सवाब*[20] एवं *प्रेमा*[21] में वे मध्यवर्गीय सुधारवाद से प्रेरित नागरिक पात्रों के माध्यम से विधवा-विवाह के युगीन प्रश्न से जूझते हैं।

## आरम्भिक हिन्दी-उपन्यासों में नगरबोध

हिन्दी-उपन्यास का प्रारंभ जीवन के उपदेशप्रवण यथार्थ चित्रण द्वारा होता है, किन्तु इसमें अतिरंजनापूर्ण काल्पनिक जीवन के रूमानी प्रकरण भी यथास्थान मिलते हैं। यथार्थ और रूमानियत का द्वन्द्व ऐतिहासिक नैरन्तर्य का वैशिष्ट्य है, अतः हिन्दी-उपन्यास में दोनों का सहभाव अस्वाभाविक नहीं है। उपदेश-प्रवणता और रूमानियत का यह संग्रथन जीवन का भी सत्य है। हिन्दी में इन दोनों से ही जुड़कर यथार्थोन्मुख उपन्यासों का विकास हुआ है।[22]

लाला श्रीनिवास दास-कृत *परीक्षागुरु* हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है।[23] स्वयं लेखक ने इसे 'नई चाल' की रचना कहा है।[24] निश्चय ही यह 'अनुभव द्वारा उपदेश मिलने की एक संसारी वार्ता' है[25] जिसमें यथार्थता एवं समसामयिकता पर ध्यान दिया गया है।[26] इस उपन्यास में दिल्ली के एक ऐसे व्यापारी के सुधार की कहानी है जो कुसंग में पड़कर गुमराह हो गया था। इसका नायक मदनमोहन मूलतः अच्छा होते हुए भी कुसंग के कारण अपना सब कुछ खो देता है। वह अव्यवस्थित, खुशामदपंसद और प्रदर्शनप्रिय व्यक्ति है। नई रोशनी से प्रभावित संयमी, विवेकी, देशप्रेमी और अपनी भाषा-संस्कृति एवं प्रगतिशील रीति-नीतियों का समर्थक ब्रजकिशोर उसे दुर्गति से बचाता है। मुन्शी चुन्नीलाल और मास्टर शंभू दयाल कसंग के जीते-जागते स्वरूप हैं।

इस उपन्यास में अंगरेजों की नकल का विरोध किया गया है। यह पाश्चात्य 'फैशन' आर विलासिता का विरोधी उपन्यास है। यों तो इसमें युग के यथार्थ को समेटने का स्तुत्य प्रयास दृष्टिगत होता है, किन्तु इसको विषय-वस्तु बंगला के अलालेर घरेर दुलाल से मिलती-जुलती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'परीक्षागुरु' में दिल्ली के नागरिक जीवन चित्रण तो हुआ है, किन्तु उपन्यासकार की दृष्टि मुख्यतः एक बिगड़े हुए व्यक्ति के सुधार पर टिकी हुई है। उसका लक्ष्य नगरबोध का निरूपण नहीं, उपदेशकथन-मात्र है। और श्रीनिवास दास ने भारत के औद्योगीकरण की चर्चा भी की है जिससे आरम्भिक के हिन्दी क्षेत्र में आकार लेते हुए नगरबोध का अनुमान किया जा सकता है।[27]

बुरी सोहबत में पड़कर धनीवर्ग का पथभ्रष्ट होना और किसी के प्रभाव या परिस्थितिवश सुमार्ग पर लौट आना भारतेन्दु युग के उपन्यासों का प्रमुख वर्ण्य-विषय था। बालकृष्ण भटट ने *सौ अजान और एक सुजान* तथा मेहता लज्जाराम शर्मा के *धूर्त रसिकलाल* में यह विषय विस्तार से वर्णित है। मेहता के दूसरे उपन्यास स्वतन्त्र *रमा और परतंत्र लक्ष्मी* में पाश्चात्य संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है।

आरम्भिक हिन्दी-उपन्यास का एक बहुत बड़ा भाग तिलिस्म ऐयारी और जासूसी से सम्बद्ध है। देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी के उपन्यास इस प्रसंग में स्मरणीय हैं। उन उपन्यासों में सामाजिक जीवन की समस्याओं के प्रति लगाव विरल है। उनमें किसी प्रकार के जीवनबोध की खोज द्रविड़ प्राणायाम हैं। तत्कालीन तथाकथित सामाजिक उपन्यास भी समस्यामूलक नहीं, नीतिपरक और उपदेशात्मक ही हैं। उस युग के उपन्यासों की सरल गति परिस्थितियों की देन है। उस समय आधुनिकीकरण की प्रक्रिया मन्द थी इसीलिए उपन्यास-साहित्य नगरबोध की जटिलताओं से अनभिज्ञ सा है। प्रेमचंद के पदार्पण के पश्चात ही 'नगर जीवन' के अनुभवों को हिन्दी उपन्यास 'बोध' के स्तर पर ग्रहण कर सका है।

## संदर्भ और टिप्पणियां

1. क. इयान वेट, दि राइज आफ द नावेल, पृ. 62-63. ख. अर्नोल्ड केटल, एन इंट्रोडक्शन टु द इंगलिश नावेल, पृ. 27-40.

2. अर्नोल्ड केटल, एन इंट्रोडक्शन टु द इंगलिश नावेल, पृ. 35.
3. भारतेन्दु ने मराठी के पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा का हिन्दी-रूपान्तरण किया था.
4. "हिन्दी के समान बंगला में भी आधुनिक कथा-साहित्य का प्रारंभ मनोरंजन अनुदित कहानियों से ही होता है."- डॉ. कैलाश प्रकाश, आरम्भिक हिन्दी उपन्यास, पृ. 61, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1962.
5. पाश्चात्य संस्कृति का बंगाली समाज पर प्रभाव बहत दिनों तक कथा का विषय बना...।" वही, पृ. 61.
6. समाचार-दर्पण (फरवरी 1821) में प्रकाशित 'बाबूर उपाख्यान' नामक सामाजिक चित्र नवबाबुबिलास का पूर्वगामी है और कुछ लोग इसे भी भवानी चरण की ही रचना मानते हैं. इन दोंनो रचनाओं की कला का विकास आलालेर घोर दलाल (1857) में हुआ, इसके लेखक टेकचंद ठाकुर (फ्यारी चांद मित्र) थे।" -वही, पृ. 61-62.
7. द्रष्टव्य : डॉ. सत्येन्द्र, बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 223.
8. आलालेर घरेर दुलाल ही बंगभाषा का प्रथम उपन्यास माना जाता है। लेखक ने अंग्रेजी भूमिका में अपनी रचना को 'प्रथम मौलिक उपन्यास' कहा है. -डॉ. कैलाश प्रकाश, आरम्भिक हिन्दी-उपन्यास, पृ. 72.
9. भारतीय साहित्य रत्नमाला, पृ. 642.
10. डॉ. चन्द्रकांत महादेव वांदिवडेकर, हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, कृष्णा ब्रदर्स प्रकाशन, अजमेर, पृ. 75.
11. कुसुमावती देशपाण्डे-1, मराठी कादंबरीचे पहिले शतक, पृ. 42.
12. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 79. 13.
13. उपर्युक्त, पृ. 123.
14. उपर्युक्त.
15. डॉ. सरला शुक्ल, उर्दू साहित्य का इतिहास, पृ. 163.
16. "दास्तानों को छोड़कर नजीर अहमद (1831-1912) ने 1869 में उर्दू का पहला उपन्यास मिरातुल अरुस (दुल्हन का आतना) लिखा।" -हिन्दी साहित्य कोश, 1, पृ. 167, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् 2015 वि.
17. भारतीय साहित्य रत्नमाला, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दार्थ आयोग, 1970, पृ. 185.
18. उर्दू साहित्य का इतिहास', पृ. 169.
19. क, "मुंशी जी की जो रचनाएं अब तक मिली हैं, उनमें असरारे मआबिद ही सबसे पुरानी रचना है...।" अमृत राय, 'भूमिका', पृ. 9, प्रेमचंद, मंगलाचरण, प्रस्तुतकर्ता: अमृत राय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978. ख. 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य', मंगलाचरण, पृ. 1-99.
20. 'हम खुर्मा व हम सवाब', वही, पृ. 101-218.
21. 'प्रेमा', वही, पृ. 219-348.
22. डॉ. बच्चन सिंह, आधनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 89.
23. "अंगरेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले-पहल हिन्दी में लाला श्रीनिवास दास का परीक्षागुरु ही निकला था।" -रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 455, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, नवम संस्करण, संवत् 2009 वि.
24. "...अपनी भाषा मैं यह नई चाल की पुस्तक होगी..."- श्रीनिवास दास, परीक्षागुरु का 'निवेदन', श्रीनिवास ग्रंथावली, पृ. 153. संपादक डॉ. श्रीकृष्ण लाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, संवत् 2010 वि.
25. द्रष्टव्य : परीक्षागुरु की भीतरी मुख पृष्ठ, श्रीनिवास ग्रन्थावली, पृ. 149.
26. "यह वार्ता पुरानी चौरासी वैष्णवन की वार्ता एवं दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता से इस गुण में भिन्न है कि यह 'संसारी' है अर्थात् इसके वर्णन 'रियलस्टिक' हैं और 'कान्टेम्परेरी' भी." -डॉ. कैलाश प्रकाश, आरम्भिक हिन्दी-उपन्यास, पृ. 90-91.
27. "हिंदुस्थान में अब तक कलों के कारखाने नहीं हैं इस्सै हिंदुस्थानियों को बड़ा नुक्सान उठाना पड़ता है. मैं जान्ता हूं कि इस्समय हिम्मत करके जो कलों के कारखाने पहले जारी करेगा उस्को जरूर फायदा रहेगा...." -परीक्षागुरु, प्रकरण 2, श्रीनिवास ग्रन्थावली, पृ. 167.